P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-III* November-2015

# नारी चेतना : अर्थ एवं स्वरूप

**सतपाल**
प्रवक्ता,
हिन्दी विभाग,
राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, बापौली,
पानीपत, हरियाणा

**सारांश**

सार रूप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक नारी चेतना का विकास हुआ है। आदिकाल में नारी के वीरांगना एवं कामिनी दोनों रूपों का विकास हुआ है। रासो काव्य की नायिका के रूप में नारी की दुर्दशा का वर्णन किया गया है। नारी के सौन्दर्य वर्णन में भी स्वस्थ दृष्टिकोण को नहीं अपनाया गया है।

भक्तिकाल के साहित्य में नारी का विकास दो रूपों में हुआ है। एक ओर तो नारी निंदा एवं उपेक्षा की पात्रा रही है और दूसरी ओर आराध्य देवताओं की संगिनी के रूप में सम्मानित हुई है। निर्गुणमार्गी संत कवियों ने नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा बताया है और दूसरी तरफ प्रेम मार्गी कवि जायसी ने नारी को ब्रह्म का प्रतीक मानकर उसकी प्रशंसा की है।

रीतिकाल में भक्तिकाल की उपेक्षित नारी मुक्तक कवियों के आकर्षण का केंद बिंदु के रूप में नायिका बन गई और ये मुक्त कवि नायिका भेदोपभेद एवं नख–शिख वर्णन करने लगे। इन कवियों ने आध्यात्मिकता की आड़ में भी नारी के वासना रूप का ही वर्णन किया है।

आधुनिक काल में नारी के विविध रूपों का विकास हुआ है। इस युग में नारी के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण होते हुए भी नारी को मात्र भोग की वस्तु नहीं माना गया है। नारी की दीन–हीन दशा के प्रति भी कवि सजग हुआ है और उसको आदर सम्मान देने में ये कवि अग्रसर रहे हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नारी चेतना का विकास सभी कालों में युगानरूप हुआ है।

**मुख्य शब्द** : नारी, चेतना, नर, आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल।

**प्रस्तावना**

**नारी शब्द की व्युत्पत्ति**

'नारी शब्द नृ अथवा नर' से बना है। नृ+घीष=नारी–नरस्य समान धर्मा नारी, नृ+अ+घीन = नारी।'[1]

नारी शब्द नर से उत्पन्न माना जाता है। 'यास्क ने 'नर' शब्द को नृत से बनाया है–नराः नृत्यन्ति कर्मसु' अर्थात् काम की पूर्ति के लिए मनुष्य हाथ पैर नचाता है। नारी के लिए स्त्री शब्द का प्रयोग भी होता है। यह शब्द उसे पुरूष के लैंगिक सहयोगी के रूप में स्त्री की व्युत्पत्ति के विषय में निरूक्तकार का मत है कि स्त्री शब्द स्त्रायै धातु से बना है। यास्क के मतानुसार स्त्रायै का अर्थ लज्जा से सिकुड़ना है। टीकाकार दुर्गाचार्य नारी की 'स्त्री' संज्ञा उसके लज्जाशील होने के कारण मानता है किन्तु पाणिनी के धातु पाठ में 'स्त्रायै' का अर्थ लजाना नहीं मिलता। धातुपाठ के अनुसार 'स्त्रायै' शब्द का अर्थ है 'शब्द करना' तथा इकट्ठा करना। जान पड़ता है कि नारी का स्त्री नाम सम्भवतः उसके वाचाल होने के कारण ही पडा। महर्षि पतंजलि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' में समझाया है कि नारी को स्त्री इसलिए कहते हैं कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर रहती है। उन्होंने एक दूसरी व्युत्पत्ति भी की है– शब्द स्पर्श–रूप सगंधाना गुणानां स्त्रायानं–संधातम–स्त्री' अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध–इन सब का समुच्चय ही स्त्री है।[2] इससे स्पष्ट है कि नारी शब्द की व्युत्पत्ति अनेक शब्दों से मानी गयी है।

**चेतना की व्याख्या**

'चेतना' प्राणी मात्र में रहने वाला वह तत्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से भिन्नता प्रदान करता है। 'चित्' संज्ञा ने–धातु' में युच, अन टाप प्रत्ययों क संयोग से चेतना शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अभिप्राय है मन की वह वृत्ति या शक्ति जिससे जीव या प्राणी को आन्तरिक अनुभूतियों भाषा, विचारों आदि तथा बाह्य घटनाओं, तत्वों या बातों का अनुभव या भान होता है।[3]

चेतना शब्द की व्युत्पत्ति से भी इसी आशय की पुष्टि होती है। अमरकोष में इसको बुद्धि, भगवद्गीता में ज्ञानात्मिका मनोवृत्ति तथा दर्शन में

इसको स्वयं प्रकाश–तत्व कहा गया है। विज्ञान के अनुसार चेतना वह अनुभूति है जो मस्तिष्क में पहुंचने वाले अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है। मनोविज्ञान की दृष्टि स चेतना मानव में उपस्थित वह तत्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूति होती है। संरचनावादी मनोवैज्ञानिक विल्हम वुट के अनुसार, 'चेतना में संवेदना, विचार, भावना तथा इच्छा सम्मिलित है। उसके अनुसार चेतना का अनुभव दो प्रकार का होता है– संवेदना तथा भावना। संवेदना बाह्य जगत से आती है और भावनाएँ आन्तरिक होती है।[4]

डॉ0 महावीर दधीच के अनुसार, 'चेतना व्यक्ति की एक ऐसी शक्ति है जो उसे अनुभूति क्षम बनाती है। अनुभूति, भाव को प्रत्यय रूप में और प्रत्ययों को अनुभूति रूप में परिणत कर सकती है तथा जो साथ–साथ भूत, वर्तमान और भविष्य की परम्परा का कथित, अनुभवों और प्रत्ययो के सन्दर्भ में निर्माण करती है।[5]

**नारी–चेतना का अर्थ एवं स्वरूप**

'नारी' शब्द नर से उत्पन्न माना जाता है तथा चेतना शब्द का अर्थ है प्राणी–मात्र में रहने वाला वह तत्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से भिन्नता प्रदान करता है। नारी–चेतना का अर्थ हुआ नारी में निहित जागरूक शक्ति। नारी समाज तथा परिवार का एक अभिन्न अंग है। जब तक नारी अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रति सचेत नहीं होगी तब तक न परिवार ठीक से चल सकता है और न ही समाज। प्राचीन काल से आज तक नारी में चेतना का निरन्तर विकास होता रहा है। वह निरन्तर विकास की सीढ़ियों पर चढ़ती रही है। नारी की प्रशंसा में शिवजी बतलाते हैं कि–नारी के समान न योग है, न जप है, न तप है, न तीर्थ है। यही इस संसार की सर्वाधिक पूजनीय देवता है क्योंकि वह पार्वती का रूप है। उसके समान न कुछ था, न ही कुछ होगा।[6]

प्रारंभ में नारी केवल एक विलास की सामग्री थी। नारी के विभिन्न रूप माँ, बहन, पुत्री आदि अधिक विकसित न हो सके थे। नारी का क्षेत्र बहुत संकुचित था। स्त्रियों को घर की चार–दीवारी के अन्दर ही रहना होता था। उन्हें पढ़ने–लिखने, नौकरी आदि की किसी भी प्रकार की आजादी नहीं थी। नारियाँ एक प्रकार की घुटन भरी जिन्दगी व्यतीत कर रही थी।

ये नारी–चेतना का ही विकास है कि नारी वर्तमान में कन्धे से कंधा मिलाकर पुरूषों के साथ कार्य कर रही है। नारी के मन में पुरूष की दासता से मुक्त होने की ललक पैदा होती है। नारी अब शिक्षित भी हो चुकी है। कर्मभूमि उपन्यास की 'सुखदा' पुलिस के सामने खड़ी होकर कहती है– क्यों भाग रहे हो? यह भागने का समय नहीं। छाती खोलकर खड़े होने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणो का होम करते हो। भागने वालों की कभी विजय नहीं होती।[7] इस समय स्त्रियाँ जागरूक हो चुकी हैं। वो पुरूषों में शक्ति का संचार करती हैं। एक बार एक फ्रेंच लेखक ने भी लिखा था कि अगर किसी देश की अवस्था का पता लगाना हो, तो वहाँ की स्त्रियों की दशा जानना जरूरी है। इसका तात्पर्य है कि जो समाज जितना अधिक उन्नतिशील होगा, वहाँ स्त्रियों की दशा उतनी ही विकसित होगी।

पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से भारतीय नारी ने नई रोशनी, नई सभ्यता के प्रसार में देखा कि वह पति की दासी नहीं हैं। समाज में नारी को भी पुरूष के समान अधिकार है। बाल–विवाह, अनमेल–विवाह, विधवा–विवाह और वेश्यावृत्ति के विरूद्ध आन्दोलन चरम पर था। प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने लिखा है–स्त्री–पुरूष एक होकर रहे, दोनों में मतभेद न होने पावे। स्त्री को गर्व न हो कि मैं स्वामी से बड़ी हूँ और न स्वामी को अभिमान हा कि ईश्वर ने सब बुद्धि मेरे ही हिस्से में रखी है। स्त्री घर की मालकिन है और पुरूष बाहर का, लेकिन दोनों मे मतैक्य हो, दोनों इस पवित्र प्रेम सूत्र में बंधे हों, जहाँ न राज है न अभिमान, न द्वेष है और न कलह।[8] भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं समाज में नारी को बहुत गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। दर्शन नारी को प्रकृति रूपा मानता है। वह सृष्टि के मूल में है। पुरूष के रागात्मक जीवन में नारी सदैव उच्च स्थान की अधिष्ठात्री रही है। वह परिवार की संचालिका है। वैदिक साहित्य में नारी के पत्नी रूप को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। वहाँ प्रत्यक गृहस्थ द्वारा कन्या की कामना की गई है। पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं माना गया। पुराणकाल में कन्या को देवी रूपा स्वीकार किया गया है जबकि श्रीमद्भागवत में नारी के कन्या रूप का गुणगान है।

इस प्रकार नारी–चेतना की परम्परा वेदों–पुराणों से चली आ रही है। अग्रेजी प्रशासन ने शिक्षा में सुधार लाकर नारी को जागृत किया और नारी ने स्वाधीनता आन्दोलन में पुरूष के समान प्रयत्न किये। स्वतंत्रता के बाद भारतीय नारी ने अधिकाधिक प्रगति की ओर कदम बढ़ाए और देश के उच्चतम प्रशासकीय पदों पर काम किया व अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र म भी अपने व्यक्तित्व का प्रभाव किया। स्त्री जागृति हुई उसे पुरूष के समान अधिकार मिले। आज की नारी परम्परा की लीक पाटने की अपेक्षा नई चुनौतियों भरी राहों पर चलने का खतरा उठाने का तत्पर है। परिणामस्वरूप नारी के विकास की गति बढ़ी उसमें अधिकार बोध विकसित हआ।

**हिन्दी–साहित्य में नारी–चेतना**

हिन्दी साहित्य के आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल के साथ–साथ हिन्दी गद्य साहित्य में भी नारी–चेतना का विकास हुआ है। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं–

**आदिकाल**

हिन्दी का आदिकाव्य वीरगाथाओं तथा धार्मिक उपदेशों के रूप में लिखा गया। फिर भी तत्कालीन वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुसार इस काव्य में नारी के वीरांगना एवं कामिनी दोनों रूपों के दर्शन होते हैं। इस काल में अधिकांश साहित्य राजकुमारियों के अपहरण तथा उनके फलस्वरूप होने वाले युद्धों का वर्णन मिलता है। इस सामन्तवादी युग में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। रासो काव्य की नायिकाओं के जीवन भी नारी–दुर्दशा की कहानी ही कहते हैं।[9]

इस काल में नारी सौन्दर्य वर्णन भी स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचायक नहीं था। डॉ0 उषा पाण्डे का यह कथन अत्यन्त समीचीन जान पड़ता है–वीर काव्य में भी नारी का श्रृंगार–सौरभ की मादकता से बोझिल स्वरूप ही दृष्टिगत होता है। उसके वीरांगना, वीरमाता और क्षत्राणी

के प्रांजल रूप को श्रृंगार की धूप ने प्रच्छन्न–सा कर दिया है।[10] तत्कालीन समाज में नारी, विलास की सामग्री होने के कारण पुरूष की निजी सम्पत्ति ही मानी जाती थी। मनुष्य स्वयं तो अपनी इच्छा से कई पत्नियॉ रख सकता था, किन्तु नारी के लिए पति की मृत्यु के पश्चात् सती हो जाना उसका कर्त्तव्य बना दिया गया। उपेक्षित नारीत्व इस प्रक्रिया के फलस्वरूप श्रृंगार की प्रेरणा बन गया था।

**भक्तिकाल**

इस काल के साहित्य में नारी मुख्यतः दा रूपों में अंकित हुई एक ओर तो वह सामान्य नारी रूप में निंदा एवं उपेक्षा की पात्रा रही तो दूसरी ओर आराध्य देवताओं की संगिनी के रूप में सम्मानित भी हुई। एक ओर तो इस युग में निर्गुणमार्गी संत कवि थे, जिन्होंने नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा एवं पुरूष को विनाश के पथ पर ले जाने वाली माना है। 'कबीर ने नारी को नरक का द्वार माना है। मलूकदास नारी ने नेत्रों को भयानक कहते हैं तथा दादूदयाल संसार को पतंगा तथा कनक–कामिनी को दीपक की लौ बताते हैं।[11]

दूसरी तरफ प्रेममार्गी कवि जायसी ने नारी को ब्रह्म का प्रतीक मानकर उसकी प्रशंसा की है। तुलसीदास ने नारी के प्रति घृणात्मक दृष्टिकोण के कारण ही उसे 'ढोल, गंवार, शुद्र एवं पशु' के सादृश्य बताया। डॉ0 नगेन्द्र के मतानुसार, तुलसीदास के 'रामचरितमानस' तथा अन्य ग्रन्थों के विभिन्न प्रसंगों में, ऐसी अनेक उक्तियाँ है, जो किसी भी देशकाल की नारी के प्रति न्याय नहीं करती। उन्होंने नारी की प्रकृति, बुद्धि विवेक, आचार, व्यवहार सभी की निंदा की है।[12] सूर के काव्यों में गोपियों एवं राधा के माध्यम से नारी का जो प्रेमिका रूप निरूपित हुआ है, वह प्रेममय एवं त्यागमय तो अवश्य है, किन्तु साथ ही वह एक असहाय निरूपाय नारी का चित्र भी प्रस्तुत करता है। अतः इस काल के कवियों के नारी विषयक दृष्टिकोण में मतभेद ही रहा है। एक ओर तो उसे मुक्ति–मार्ग की बाधा मानकर उसकी अपेक्षा की है तो दूसरी ओर सीता, पार्वती की वन्दना भी की है। एक ओर उसे नागिन व नरक का द्वार कहा है तो दूसरी ओर अपनी आत्मा को भी नारी–रूप में ही अंकित किया है।[13]

**रीतिकाल**

रीतिकाल में भक्तिकाव्य की उपेक्षित नारी रीतिकालीन मुक्तक काव्य में आकर्षण की केंद्र बिन्दु 'नायिका' बन गई और ये मुक्तिकार नायिका भेदोपभेद एवं नख–शिख वर्णन में अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने लगे।

इन कवियों ने राधा–कृष्ण की लीलाओं का जो वर्णन किया है, उसमें भी आध्यात्मिकता की आड़ में नारी के प्रति वासना ही व्यक्त हुई है। उस विलासपूर्ण वातावरण में नारी का केवल कामिनी एवं प्रेयसी रूप ही शेष रह गया। यद्यपि इस काव्य में अंकित प्रेमिकाएँ अधिकांशतः परकीयाएँ ही है, जिनमें उज्ज्वल पत्नीत्व की गरिमा को खोजने पर निराशा ही मिलती है, फिर भी, प्रिय के ध्यान में आत्मविस्मृत हो अपना ही प्रतिबिम्ब दर्पण में देखकर रीझने वाली यह प्रेमिका रूपा नारी, प्रमिका के उत्कर्षमय भाव–संवलित रूप का आदर्श भी प्रस्तुत करती है।[14]

इन कवियों की दृष्टि न तो सीता के पतिव्रत पर गई, न सावित्री के सतीत्व पर, न पार्वती की पावनता पर गई और न ही यशोदा की ममतामयी मातृ–गरिमा पर! रीतिबद्ध कवियों के द्वारा तो नारी के सामाजिक जीवन के महत्व का उद्घाटन हो ही नहीं पाया, रीतिमुक्त कवियों में भी उसका यह महत्व व्यक्त नहीं हो पाया। सभी बंधी–बंधाई लकीर पर उसके अंग–प्रत्यंग की शोभा, हाव–भाव और विलास चेष्टाओं का वर्णन करते रहे। इस संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद के शब्द विशिष्ट रूप में अवलोकनीय हैं– यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बन्धन से यथासम्भव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र है। देव ने कहा है–

'कौन गनै पुर बन नगर कामिनी एकै रीति।
देखल हरै विवेक को चित्त हरै करि, प्रीति।[15]

**आधुनिक काल**

आधुनिक काल में सर्वप्रथम भारतेन्दु युग आता है। इस काल के कवियों की दृष्टि नारी के विविधरूपों पर तो अवश्य गई है। किन्तु वे उसकी शक्ति के प्रति पूर्णतः आश्वस्त नहीं जान पड़ते। इस युग में नारी के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण होते हुए भी नारी निपट भोग्या या उपेक्षित नहीं रही। उसको हीन–दशा के प्रति भी कवि की सहानुभूति सजग हुई और उसको आवश्यक आदर देने की दिशा म भी ये कवि अग्रसर हुए।

द्विवेदी युगीन काव्य में नारी संबंधी दो दृष्टियाँ मिलती हैं–एक रीतिकाव्य के अवशेष रूप में उसी परम्परा की कड़ी में जुड़ी हुई भारतेन्दु और बदरीनारायण प्रेमधन की नायिकाएँ।[16] दूसरी युग चेतना से प्रभावित गुप्त और हरिऔध के नारी चित्रण। गुप्त जी ने नारी चरित्रों का सर्जन पुरूषों की भोग्या एवं काम्या के रूप में नहीं वरन् पुरूष की संगिनी वाली भावना से किया है। 'साकेत', यशोधरा और 'विष्णुप्रिया' नारी प्रधान कृतियाँ हैं। गुप्त जी नारी को मानवतावादी मूल्य, भावनाशील दृष्टि और सामाजिक सम्पन्नता की कसौटी पर परखते हैं।[17]

हरि औध ने 'प्रियप्रवास' के माध्यम से नारी के चरित्र को राधा रूप में प्रेम और कर्त्तव्य भावना का अद्भुत सामंजस्य दिखाया है–सामाजिक सन्दर्भों में नारी संबंधी समस्याओं–बाल–विवाह, अनमेल–विवाह, वैध्व्य आदि समस्याओं को अपनी रचनाओं में प्रमुखता प्रदान की है और समस्या के निराकरण के उपाय भी बताए हैं।

छायावाद युगीन काव्य में नारी के विभिन्न रूपों का वर्णन किया गया है। जयशंकर प्रसाद ने अपनी रचना झरना, आँसू, लहर, कामायनी इत्यादि रचनाओं में नारी के रमणीय रूप का वर्णन किया है। इसके साथ–साथ उसे सृष्टि की उत्पत्ति करने वाला भी बताया है।

प्रकृति के चितेरे श्री सुमित्रानंदन पंत ने भी नारी के रमणीय रूप के साथ उसके दुःख, पीड़ा व अभावों का भी वर्णन किया है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला व महादेवी वर्मा ने अपनी साहित्यिक रचनाओं में नारी की पीड़ा को विभिन्न रूपों में व्यक्त किया है।

प्रगतिवादी व प्रयोगवादी रचनाओं में भी नारी के विविध रूपों का वर्णन किया गया है। श्रमिक वर्ग के शोषण के साथ–साथ नारी शोषण की समस्याओं को भी उठाया गया है।

'वह तोड़ती पत्थर,
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर ।।

नई कविता के कवियों ने नारी के भोग एवं वासना रूप का वर्णन किया है। अज्ञेय, शकुन्तला माथुर आदि कवियों ने अपनी रचनाओं में नारी के कामुक रूप का वर्णन किया है।

बढ़ रही है परिधि मेरे स्तनों की
हसरतें जवान है।

परिवर्ती कवियों ने हिंदी साहित्य में नारी को मात्र भोग की वस्तु न मानकर उसकी दीन दशा भी वर्णन किया है। इस प्रकार इस काल में नारी का सम्मान हुआ और नारी चेतना का विकास हुआ।

**निष्कर्ष**

सार रूप में कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक नारी चेतना का विकास हुआ है। आदिकाल में नारी के वीरांगना एवं कामिनी दोनों रूपों का विकास हुआ है। रासो काव्य की नायिका के रूप में नारी की दुर्दशा का वर्णन किया गया है। नारी के सौन्दर्य वर्णन में भी स्वस्थ दृष्टिकोण को नहीं अपनाया गया है।

भक्तिकाल के साहित्य में नारी का विकास दो रूपों में हुआ है। एक ओर तो नारी निंदा एवं उपेक्षा की पात्रा रही है और दूसरी ओर आराध्य देवताओं की संगिनी के रूप में सम्मानित हुई है। निर्गुणमार्गी संत कवियों ने नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा बताया है और दूसरी तरफ प्रेम मार्गी कवि जायसी ने नारी को ब्रह्म का प्रतीक मानकर उसकी प्रशंसा की है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. डॉ0 वल्लभ दास तिवारी – हिंदी काव्य में नारी, पृ0–36।
2. डॉ0 वल्लभ दास तिवारी – हिंदी काव्य में नारी, पृ0–37।
3. रामचन्द्र वर्मा – मानक हिंदी कोश, पृ0–274।
4. रामपाल सिंह वर्मा – मनोविज्ञान के सम्प्रदाय, पृ0–3।
5. डॉ0 महावीर दधीच – आधुनिक और भारतीय परम्परा, पृ0–10।
6. वृहद् – संहिता, पृ0 –74।
7. डॉ0 रेखा कुलकर्णी – हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ0–84।
8. डॉ0 रेखा कुलकर्णी – हिंदी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ0–70।
9. डॉ0 जे0 एम0 देसाई – आधुनिक हिंदी काम में नारी, पृ0–38।
10. डॉ0 जे0 एम0 देसाई – आधुनिक हिंदो काव्य में नारी, पृ0–39।
11. डॉ0 जे0 एम0 देसाई – आधुनिक हिंदी काव्य में नारी, पृ0–40।
12. डॉ0 जे0 एम0 देसाई – आधुनिक हिंदी काव्य में नारी, पृ0–41।
13. डॉ0 जे0 एम0 देसाई – आधुनिक हिंदी काव्य में नारी, पृ0–43।
14. डॉ0 जे0 एम0 देसाई – आधुनिक हिंदी काव्य में नारी, पृ0–44।
15. डॉ0 शिव कुमार शर्मा – हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, पृ0–336।
16. डॉ0 देनेश ठाकुर – प्रसाद के नारी पात्र पृ0–149।
17. मैथिलीशरण गुप्त – व्यक्ति और रचना, पृ0–127।